नारी प्रधान

दो कहानियाँ

प्रेमचन्द

माँ

घासवाली

प्रेमचन्द (1880-1936) को आधुनिक हिन्दी और उर्दू साहित्य के अग्रणी कहानीकारों में माना जाता है। उन्होंने 300 कहानियां और 12 उपन्यासों की रचना की। इनकी प्रथम कहानी कानपुर की 'ज़माना' पत्रिका में उर्दू में प्रकाशित हुई। 1914 में प्रेमचन्द ने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया और उनकी रचनाओं में जो ताज़गी और प्रासंगिकता अपने रचना-काल के समय थी, वह आज भी है।

...

'सरल भाषा का प्रयोग और रोचक ढंग से कहानी सुनाना प्रेमचन्द के लेखन की अहम विशेषता रही है। ...उनकी एक और विशेषता है कि उन्होंने अपनी रचना में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी की जगह बोलचाल की आम भाषा का प्रयोग किया है।'

— हिन्दुस्तान टाइम्स

'प्रेमचन्द ने कथा की बारीकियों पर कब्ज़ा करने की उल्लेखनीय क्षमता दिखाई।'

— आलोक राय, दि स्टेटसमैन

'प्रेमचन्द भारत है... यदि आपने प्रेमचन्द नहीं पढ़ा तो आप बहुत कुछ से वंचित हैं।'

— दि हिन्दू

प्रेमचन्द नारी-प्रधान साहित्य

माँ

घासवाली

दो कहानियाँ

प्रेमचन्द

ओरिएंट पब्लिशिंग

सर्वाधिकार सुरक्षित। यह पुस्तक या इसका कोई भी भाग लेखक या प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना, इलैक्ट्रॉनिक या यान्त्रिक (जिसमे फोटोकॉपी, रिकार्डिंग भी सम्मिलित है) विधि से या सूचना संग्रह तथा पुनः प्राप्ति-पद्धति (रिट्रिवल) द्वारा किसी भी रूप में पुनः प्रकाशित, अनूदित या संचारित नहीं किया जा सकता।

— प्रकाशक

माँ और घासवालीः दो कहानियाँ
प्रेमचन्द
© ओरिएंट पब्लिशिंग

प्रकाशक:
ओरिएंट पब्लिशिंग
5ए/8 अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली – 110002

...

All rights reserved. No part of this material may be reproduced or transmitted in any form, or by any means electronic or mechanical, including photocopy, recording, or by any information storage and retrieval system without the written permission of the publisher, except for inclusion of brief quotations in a review.

— Publisher

Maa and Ghaswali: Two Stories
By Premchand
© Orient Publishing

Subject: Fiction / Short Stories

Published by:
Orient Publishing (a division of Vision Books Pvt. Ltd.)
5A/8 Ansari Road, Darya Ganj, New Delhi – 110002, India
www.orientpublishing.com

Text and Cover Design by: Vision Studio
Edited by: Editorial Team of Orient Publishing

अनुक्रम

लेखक के बारे में

मुखपृष्ठ

सर्वाधिकार और अनुमतियाँ

माँ

घासवाली

माँ

आज बन्दी छूटकर घर आ रहा है। करुणा ने एक दिन पहले ही घर लीप-पोत रखा था। इन तीन वर्षों में उसने कठिन तपस्या करके जो दस-पाँच रुपये जमा कर रखे थे, वह सब पति के सत्कार और स्वागत की तैयारियों में ख़र्च कर दिये। पति के लिए धोतियों का नया जोड़ा लायी थी, नये कुरते बनवाये थे, बच्चे के लिए नये कोट और टोपी की आयोजना की थी। बार-बार बच्चे को गले लगाती ओर प्रसन्न होती। अगर इस बच्चे ने सूर्य की भाँति उदय होकर उसके अंधेरे जीवन को प्रदीप्त न कर दिया होता, तो कदाचित् ठोकरों ने उसके जीवन का अंत कर दिया होता। पति के कारावास-दण्ड के तीन ही महीने बाद इस बालक का जन्म हुआ। उसी का मुँह देख-देखकर करुणा ने यह तीन साल काट दिये थे। वह सोचती, जब मैं बालक को उनके सामने ले जाऊँगी, तो वह कितने प्रसन्न होंगे! उसे देखकर पहले तो चकित हो जायेंगे, फिर गोद में उठा लेंगे और कहेंगे — करुणा, तुमने यह रत्न देकर मुझे निहाल कर दिया। कैद के सारे कष्ट बालक की तोतली बातों में भूल जायेंगे, उनकी एक सरल, पवित्र, मोहक दृष्टि हृदय की सारी व्यथाओं को धो डालेगी। इस कल्पना का आनंद लेकर वह फूली न समाती थी।

वह सोच रही थी, आदित्य के साथ बहुत-से आदमी होंगे। जिस समय वह द्वार पर पहुँचेंगे, जय-जयकार की ध्वनि से आकाश गूँज उठेगा। वह कितना स्वर्गीय दृश्य होगा! उन आदमियों के बैठने के लिए करुणा ने एक फटा-सा टाट बिछा दिया था, कुछ पान बना दिये थे और बार-बार आशामय नेत्रों से द्वार की ओर ताकती थी। पति की वह सुदृढ़, उदार, तेजपूर्ण मुद्रा बार-बार आँखों में फिर जाती थी। उनकी वे बातें बार-बार याद आती थीं, जो चलते समय उनके मुख से निकली थीं, उनका वह धैर्य, वह आत्मबल, जो पुलिस के प्रहारों के सामने भी अटल रहा था, वह मुस्कराहट जो उस समय भी उनके अधरों पर खेल रही थी; वह आत्माभिमान, जो उस समय भी उनके मुख से टपक रहा था, क्या करुणा के हृदय से कभी विस्मृत हो सकता था! उसका स्मरण आते ही करुणा के निस्तेज मुख पर आत्मगौरव की लालिमा छा गयी। यही वह अवलम्ब था, जिसने इन तीन वर्षों की घोर यातनाओं में भी उसके हृदय को आश्वासन दिया था। कितनी ही राते फ़ाक़ों से गुज़रीं, बहुधा घर में दीपक जलने की नौबत भी न आती थी, पर दीनता के आँसू कभी उसकी आँखों से न गिरे। आज उन सारी विपत्तियों का अंत हो जाएगा। पति के प्रगाढ़ आलिंगन में वह सब कुछ हँसकर झेल लेगी। वह अनंत निधि पाकर फिर उसे कोई अभिलाषा न रहेगी।

गगन-पथ का चिरगामी पथिक (सूर्य) लपका हुआ विश्राम की ओर चला जाता था, जहाँ संध्या ने सुनहरा फर्श सजाया था और उज्ज्वल पुष्पों की सेज बिछा रखी थी। उसी समय करुणा को एक आदमी लाठी टेकता आता दिखाई दिया, मानो किसी जीर्ण मनुष्य की वेदना-ध्वनि हो। पग-पग पर रुककर खाँसने लगता था। उसका सिर झुका हुआ था, करुणा

उसका चेहरा न देख सकती थी, लेकिन चाल-ढाल से कोई बूढ़ा आदमी मालूम होता था; पर एक क्षण में जब वह समीप आ गया, तो करुणा पहचान गयी। वह उसका प्यारा पति ही था, किन्तु शोक! उसकी सूरत कितनी बदल गयी थी। वह जवानी, वह तेज, वह चपलता, वह सुगठन, सब प्रस्थान कर चुका था। केवल हड्डियों का एक ढाँचा रह गया था। न कोई संगी, न साथी, न यार, न दोस्त। करुणा उसे पहचानते ही बाहर निकल आयी, पर आलिंगन की कामना हृदय में दबकर रह गयी। सारे मनसूबे धूल में मिल गये। सारा मनोल्लास आँसुओं के प्रवाह में बह गया, विलीन हो गया।

आदित्य ने घर में कदम रखते ही मुस्कराकर करुणा को देखा। पर उस मुस्कान में वेदना का एक संसार भरा हुआ था। करुणा ऐसी शिथिल हो गयी, मानो हृदय का स्पंदन रुक गया हो। वह फटी हुई आँखों से स्वामी की ओर टकटकी बाँधे खड़ी थी, मानो उसे अपनी आँखों पर अब भी विश्वास न आता हो। स्वागत या दुःख का एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला। बालक भी उसकी गोद में बैठा हुआ सहमी आँखों से इस कंकाल को देख रहा था और माता की गोद से चिपटा जाता था।

आखिर उसने कातर स्वर में कहा — यह तुम्हारी क्या दशा है? बिलकुल पहचाने नहीं जाते!

आदित्य ने उसकी चिन्ता को शांत करने के लिए मुस्कराने की चेष्टा करके कहा — कुछ नहीं, ज़रा दुबला हो गया हूँ। तुम्हारे हाथों का भोजन पाकर फिर स्वस्थ हो जाऊँगा।

करुणा — छी! सूखकर काँटा हो गये। क्या वहाँ भरपेट भोजन भी नहीं मिलता? तुम तो कहते थे, राजनैतिक आदमियों के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया जाता है; और वह तुम्हारे साथी क्या हो गये, जो तुम्हें आठों पहर घेरे रहते थे और तुम्हारे पसीने की जगह ख़ून बहाने को तैयार रहते थे?

आदित्य की त्योरियों पर बल पड़ गये, बोले — यह बड़ा ही कटु अनुभव है करुणा! मुझे न मालूम था कि मेरे कैद होते ही लोग मेरी ओर से यों आँखें फेर लेंगे, कोई बात भी न पूछेगा। राष्ट्र के नाम पर मिटनेवालों का यही पुरस्कार है, यह मुझे न मालूम था। जनता अपने सेवकों को बहुत जल्द भूल जाती है, यह तो मैं जानता था, लेकिन अपने सहयोगी और सहायक इतने बेवफा होते हैं, इसका मुझे यह पहला ही अनुभव हुआ। लेकिन मुझे किसी से शिकायत नहीं। सेवा स्वयं अपना पुरस्कार है। मेरी भूल थी कि मैं इसके लिए यश और नाम चाहता था।

करुणा — तो क्या वहाँ भोजन भी न मिलता था?

आदित्य — यह न पूछो करुणा, बड़ी करुण कथा है। बस, यही गनीमत समझो कि जीता लौट आया। तुम्हारे दर्शन बदे थे, नहीं कष्ट तो ऐसे-ऐसे उठाए कि अब तक मुझे प्रस्थान कर

जाना चाहिए था। मैं ज़रा लेटूँगा। खड़ा नहीं रहा जाता। दिन-भर में इतनी दूर आया हूँ।

करुणा — चलकर कुछ खा लो, तो आराम से लेटो। (बालक को गोद में उठाकर) बाबूजी हैं बेटा, तुम्हारे बाबूजी। इनकी गोद में जाओ, तुम्हें प्यार करेंगे।

आदित्य ने आँसू-भरी आँखों से बालक को देखा और उनका एक-एक रोम उनका तिरस्कार करने लगा। अपनी जीर्ण दशा पर उन्हें कभी इतना दुःख न हुआ था। ईश्वर की असीम दया से यदि उनकी दशा संभल जाती, तो वह फिर कभी राष्ट्रीय आन्दोलन के समीप न जाते। इस फूल-से बच्चे को यों संसार में लाकर दरिद्रता की आग में झोंकने का उन्हें क्या अधिकार था? वह अब लक्ष्मी की उपासना करेंगे और अपना क्षुद्र जीवन बच्चे के लालन-पालन के लिए अर्पित कर देंगे। उन्हें इस समय ऐसा ज्ञात हुआ कि बालक उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा है, मानो कह रहा है — मेरे साथ आपने कौन-सा कर्त्तव्य-पालन किया? उनकी सारी कामना, सारा प्यार बालक को हृदय से लगा लेने के लिए अधीर हो उठा, पर हाथ न फैल सके। हाथों में शक्ति ही न थी।

करुणा बालक को लिये हुए उठी और थाली में कुछ भोजन निकालकर लायी। आदित्य ने क्षुधापूर्ण नेत्रों से थाली की ओर देखा, मानो आज बहुत दिनों के बाद कोई खाने की चीज़ सामने आयी है। जानता था कि कई दिनों के उपवास के बाद और आरोग्य की इस गयी-गुज़री दशा में उसे ज़बान को काबू में रखना चाहिए पर सब्र न कर सका, थाली पर टूट पड़ा और देखते-देखते थाली साफ़ कर दी। करुणा सशंक हो गयी। उसने दोबारा किसी चीज़ के लिए न पूछा। थाली उठाकर चली गयी, पर उसका दिल कह रहा था, इतना तो कभी न खाते थे।

करुणा बच्चे को कुछ खिला रही थी कि एकाएक कानों में आवाज़ आयी — करुणा!

करुणा ने आकर पूछा — क्या तुमने मुझे पुकारा है?

आदित्य का चेहरा पीला पड़ गया था और साँस ज़ोर-ज़ोर से चल रही थी। हाथों के सहारे वहीं टाट पर लेट गये थे। करुणा उनकी यह हालत देखकर घबरा गयी। बोली — जाकर किसी वैद्य को बुला लाऊँ?

आदित्य ने हाथ के इशारे से उसे मना करके कहा — व्यर्थ है करुणा! अब तुमसे छिपाना व्यर्थ है, मुझे तपेदिक हो गया है। कई बार मरते-मरते बच गया हूँ। तुम लोगों के दर्शन बदे थे, इसलिए प्राण न निकलते थे। देखो प्रिये, रोओ मत।

करुणा ने सिसकियों को दबाते हुए कहा — मैं वैद्य को लेकर अभी आती हूँ।

आदित्य ने फिर सिर हिलाया — नहीं करुणा, केवल मेरे पास बैठी रहो। अब किसी से कोई

आशा नहीं है। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया है। मुझे तो यह आश्चर्य है कि यहाँ पहुँच कैसे गया। न जाने कौन-सी दैवी शक्ति मुझे वहाँ से खींच लायी। कदाचित् यह इस बुझते हुए दीपक की अन्तिम झलक थी। आह! मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया। इसका मुझे हमेशा दुःख रहेगा! मैं तुम्हें कोई आराम न दे सका। तुम्हारे लिए कुछ न कर सका। केवल सोहाग का दाग़ लगाकर और एक बालक के पालन का भार छोड़कर चला जा रहा हूँ। आह!

करुणा ने हृदय को दृढ़ करके कहा — तुम्हें कहीं दर्द तो नहीं है? आग बना लाऊँ? कुछ बताते क्यों नहीं?

आदित्य ने करवट बदलकर कहा — कुछ करने की ज़रूरत नहीं प्रिये! कहीं दर्द नहीं। बस, ऐसा मालूम हो रहा है कि दिल बैठा जाता है, जैसे पानी में डूबा जाता हूँ। जीवन की लीला समाप्त हो रही है। दीपक को बुझते हुए देख रहा हूँ। कह नहीं सकता, कब आवाज़ बन्द हो जाये। जो कुछ कहना है, वह कह डालना चाहता हूँ, क्यों वह लालसा ले जाऊँ। मेरे एक प्रश्न का जवाब दोगी, पूछूँ?

करुणा के मन की सारी दुर्बलता, सारा शोक, सारी वेदना मानो लुप्त हो गयी और उनकी जगह उस आत्मबल का उदय हुआ, जो मृत्यु पर हँसता है और विपत्ति के साँपों से खेलता है। रत्नजटित मखमली म्यान में जैसे तेज़ तलवार छिपी रहती है, जल के कोमल प्रवाह में जैसे असीम शक्ति छिपी रहती है, वैसे ही रमणी का कोमल हृदय साहस और धैर्य को अपनी गोद में छिपाये रहता है। क्रोध जैसे तलवार को बाहर खींच लेता है, विज्ञान जैसे जल-शक्ति का उदघाटन कर देता है, वैसे ही प्रेम रमणी के साहस और धैर्य को प्रदीप्त कर देता है।

करुणा ने पति के सिर पर हाथ रखते हुए कहा — पूछते क्यों नहीं प्यारे!

आदित्य ने करुणा के हाथों के कोमल स्पर्श का अनुभव करते हुए कहा — तुम्हारे विचार में मेरा जीवन कैसा था? बधाई के योग्य? देखो, तुमने मुझसे कभी पर्दा नहीं रखा। इस समय भी स्पष्ट कहना। तुम्हारे विचार में मुझे अपने जीवन पर हँसना चाहिए या रोना चाहिए?

करुणा ने उल्लास के साथ कहा — यह प्रश्न क्यों करते हो प्रियतम? क्या मैंने तुम्हारी उपेक्षा कभी की है? तुम्हारा जीवन देवताओं का-सा जीवन था, निःस्वार्थ, निर्लिप्त और आदर्श! विघ्न-बाधाओं से तंग आकर मैंने तुम्हें कितनी ही बार संसार की ओर खींचने की चेष्टा की है; पर उस समय भी मैं मन में जानती थी कि मैं तुम्हें ऊँचे आसन से गिरा रही हूँ। अगर तुम माया-मोह में फँसे होते, तो कदाचित् मेरे मन को अधिक संतोष होता; लेकिन मेरी आत्मा को वह गर्व और उल्लास न होता, जो इस समय हो रहा है। मैं अगर किसी को बड़े-से-बड़ा आशीर्वाद दे सकती हूँ, तो वह यही होगा कि उसका जीवन तुम्हारे जैसा हो।

यह कहते-कहते करुणा का आभाहीन मुखमंडल ज्योतिर्मय हो गया, मानो उसकी आत्मा

दिव्य हो गयी हो। आदित्य ने सगर्व नेत्रों से करुणा को देखकर कहा — बस, अब मुझे संतोष हो गया, करुणा, इस बच्चे की ओर से मुझे कोई शंका नहीं है, मैं इसे इससे अधिक कुशल हाथों में नहीं छोड़ सकता। मुझे विश्वास है कि जीवन-भर यह ऊँचा और पवित्र आदर्श सदैव तुम्हारे सामने रहेगा। अब मैं मरने को तैयार हूँ।

...

सात वर्ष बीत गये।

बालक प्रकाश अब दस साल का रूपवान, बलिष्ठ, प्रसन्नमुख कुमार था, बला का तेज़, साहसी और मनस्वी। भय तो उसे छू भी नहीं गया था। करुणा का संतप्त हृदय उसे देखकर शीतल हो जाता। संसार करुणा को अभागिनी और दीन समझे। वह कभी भाग्य का रोना नहीं रोती। उसने उन आभूषणों को बेच डाला, जो पति के जीवन में उसे प्राणों से प्रिय थे, और उस धन से कुछ गायें और भैंसे मोल ले लीं। वह कृषक की बेटी थी, और गो-पालन उसके लिए कोई नया व्यवसाय न था। इसी को उसने अपनी जीविका का साधन बनाया। विशुद्ध दूध कहाँ मयस्सर (मिलता) होता है? सब दूध हाथों-हाथ बिक जाता। करुणा को पहर रात से पहर रात तक काम में लगा रहना पड़ता, पर वह प्रसन्न थी। उसके मुख पर निराशा या दीनता की छाया नहीं, संकल्प और साहस का तेज है। उसके एक-एक अंग से आत्मगौरव की ज्योति-सी निकल रही है; आँखों में एक दिव्य प्रकाश है, गंभीर, अथाह और असीम। सारी वेदनाएँ-वैधव्य का शोक और विधि का निर्मम प्रहार-सब उस प्रकाश की गहराई में विलीन हो गया है।

प्रकाश पर वह जान देती है। उसका आनंद, उसकी अभिलाषा, उसका संसार उसका स्वर्ग सब प्रकाश पर न्यौछावर है; पर यह मजाल नहीं कि प्रकाश कोई शरारत करे और करुणा आँखें बंद कर ले। नहीं, वह उसके चरित्र की बड़ी कठोरता से देख-भाल करती है। वह प्रकाश की माँ नहीं, माँ-बाप दोनों है। उसके पुत्र-स्नेह में माता की ममता के साथ पिता की कठोरता भी मिली हुई है। पति के अन्तिम शब्द अभी तक उसके कानों में गूँज रहे हैं। वह आत्मोल्लास, जो उनके चेहरे पर झलकने लगा था, वह गर्वमय लाली, जो उनकी आँखो में छा गयी थी, अभी तक उसकी आँखों में फिर रही है। निरंतर पति-चिन्तन ने आदित्य को उसकी आँखों में प्रत्यक्ष कर दिया है। वह सदैव उनकी उपस्थिति का अनुभव किया करती है। उसे ऐसा जान पड़ता है कि आदित्य की आत्मा सदैव उसकी रक्षा करती रहती है। उसकी यही हार्दिक अभिलाषा है कि प्रकाश जवान होकर पिता का पदगामी हो।

संध्या हो गयी थी। एक भिखारिन द्वार पर आकर भीख माँगने लगी। करुणा उस समय गउओं को सानी दे रही थी। प्रकाश बाहर खेल रहा था। बालक ही तो ठहरा! शरारत सूझी। घर में गया और कटोरे में थोड़ा-सा भूसा लेकर बाहर निकला। भिखारिन ने अपनी झोली फैला दी। प्रकाश ने भूसा उसकी झोली में डाल दिया और ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजाता हुआ भागा।

भिखारिन ने अग्निमय नेत्रों से देखकर कहा — वाह रे लाड़ले! मुझसे हँसी करने चला है! यही माँ-बाप ने सिखाया है! तब तो ख़ूब कुल का नाम जगाओगे!

करुणा उसकी बोली सुनकर बाहर निकल आयी, और पूछा — क्या है माता? किसे कह रही हो?

भिखारिन ने प्रकाश की तरफ़ इशारा करके कहा — वह तुम्हारा लड़का है न। देखो, कटोरे में भूसा भरकर मेरी झोली में डाल गया है। चुटकी-भर आटा था, वह भी मिट्टी में मिल गया। कोई इस तरह दुखियों को सताता है? सबके दिन एक-से नहीं रहते। आदमी को घमंड न करना चाहिए।

करुणा ने कठोर स्वर में पुकारा — प्रकाश?

प्रकाश लज्जित न हुआ। अभिमान से सिर उठाए हुए आया और बोला — वह हमारे घर भीख क्यों माँगने आयी है? कुछ काम क्यों नहीं करती?

करुणा ने उसे समझाने की चेष्टा करके कहा — शर्म नहीं आती, उलटे और आँख दिखाते हो।

प्रकाश — शर्म क्यों आए? यह क्यों रोज़ भीख माँगने आती है? हमारे यहाँ क्या कोई चीज़ मुफ़्त आती है?

करुणा — तुम्हें कुछ न देना था तो सीधे से कह देते; जाओ। तुमने यह शरारत क्यों की?

प्रकाश — उसकी आदत कैसे छूटती?

करुणा ने बिगड़कर कहा — तुम अब पिटोगे मेरे हाथों।

प्रकाश — पिटूँगा क्यों? आप ज़बरदस्ती पीटेंगी? दूसरे मुल्कों में अगर कोई भीख माँगे, तो कैदकर लिया जाये। यह नहीं कि उल्टे भिखमंगों को और शह दी जाये।

करुणा — जो अपंग है, वह कैसे काम करे?

प्रकाश — तो जाकर डूब मरे, ज़िन्दा क्यों रहती है?

करुणा निरुत्तर हो गयी। बुढ़िया को तो उसने आटा-दाल देकर विदा किया, किन्तु प्रकाश का कुतर्क उसके हृदय में फोड़े के समान टीसता रहा। उसने यह धृष्टता, यह अविनय कहाँ सीखी? रात को भी उसे बार-बार यही ख्याल सताता रहा।

आधी रात के समीप एकाएक प्रकाश की नींद टूटी तो देखा, लालटेन जल रही है और

करुणा बैठी रो रही है। उठ बैठा और बोला — अम्माँ, अभी तुम सोयी नहीं?

करुणा ने मुँह फेरकर कहा — नींद नहीं आयी। तुम कैसे जग गये? प्यास तो नहीं लगी है?

प्रकाश — नहीं अम्माँ, न जाने क्यों आँख खुल गयी। मुझसे आज बड़ा अपराध हुआ, अम्माँ!

करुणा ने उसके मुख की ओर स्नेह के नेत्रों से देखा।

प्रकाश — मैंने आज बुढ़िया के साथ बड़ी नटखटी की। मुझे क्षमा करो, फिर कभी ऐसी शरारत न करूँगा।

यह कहकर वह रोने लगा। करुणा ने स्नेहार्द्र होकर उसे गले लगा लिया और उसके कपोलों का चुम्बन करके बोली — बेटा, मुझे खुश करने के लिए यह कह रहे हो या तुम्हारे मन में सचमुच पछतावा हो रहा है?

प्रकाश ने सिसकते हुए कहा — नहीं अम्माँ, मुझे दिल से अफसोस हो रहा है। अबकी वह बुढ़िया आयेगी, तो मैं उसे बहुत-से पैसे दूँगा।

करुणा का हृदय मतवाला हो गया। ऐसा जान पड़ा, आदित्य सामने खड़े बच्चे को आशीर्वाद दे रहे हैं और कह रहे हैं, करुणा, क्षोभ मत कर, प्रकाश अपने पिता का नाम रोशन करेगा। तेरी संपूर्ण कामनाएँ पूरी हो जाएँगी।

...

लेकिन प्रकाश के कर्म और वचन में मेल न था और दिनों के साथ उसके चरित्र का यह अंग प्रत्यक्ष होता जाता था। ज़हीन था ही, विश्वविद्यालय से उसे वज़ीफ़े मिलते थे, करुणा भी उसकी यथेष्ट सहायता करती रहती थी, फिर भी उसका ख़र्च पूरा न पड़ता था। वह मितव्ययता और सरल जीवन पर विद्वत्ता से भरे हुए व्याख्यान दे सकता था, पर उसका रहन-सहन फ़ैशन के अंधभक्तों से जौ-भर भी घटकर न था। प्रदर्शन की धुन उसे हमेशा सवार रहती थी। उसके मन और बुद्धि में निरंतर द्वन्द्व होता रहता था। मन जाति की ओर था, बुद्धि अपनी ओर। बुद्धि मन को दबाये रखती थी। उसके सामने मन की एक न चलती थी। जाति-सेवा ऊसर की खेती है, वहाँ बड़े-से-बड़ा उपहार जो मिल सकता है, वह है गौरव और यश; पर वह भी स्थायी नहीं, इतना अस्थिर कि एक क्षण में जीवन-भर की कमाई पर पानी फिर सकता है। अतएव उसका अंतःकरण अनिवार्य वेग के साथ विलासमय जीवन की ओर झुकता था। यहाँ तक कि धीरे-धीरे उसे त्याग और निग्रह से घृणा होने लगी। वह दुरावस्था और दरिद्रता को हेय समझता था। उसके हृदय न था, भाव न थे, केवल मस्तिष्क था। मस्तिष्क में दर्द कहाँ, दया कहाँ, यहाँ तो तर्क हैं, हौसला है, मनसूबे हैं।

सिंध में बाढ़ आयी। हज़ारों आदमी तबाह हो गये। विद्यालय ने वहाँ एक सेवा समिति भेजी। प्रकाश के मन में द्वंद्व होने लगा, जाऊँ या न जाऊँ? इतने दिनों अगर वह परीक्षा की तैयारी करे, तो प्रथम श्रेणी में पास हो। चलते समय उसने बीमारी का बहाना कर दिया। करुणा ने लिखा, तुम सिन्ध न गये, इसका मुझे दुख है। तुम बीमार रहते हुए भी वहाँ जा सकते थे। समिति में चिकित्सक भी तो थे! प्रकाश ने पत्र का उत्तर न दिया।

उड़ीसा में अकाल पड़ा। प्रजा मक्खियों की तरह मरने लगी। कांग्रेस ने पीड़ितों के लिए एक मिशन तैयार किया। उन्हीं दिनों विद्यालयों ने इतिहास के छात्रों को ऐतिहासिक खोज के लिए लंका (सीलोन) भेजने का निश्चय किया। करुणा ने प्रकाश को लिखा, तुम उड़ीसा जाओ। किन्तु प्रकाश लंका जाने को लालायित था। वह कई दिन इसी दुविधा में रहा। अंत को सीलोन ने उड़ीसा पर विजय पायी। करुणा ने अबकी उसे कुछ न लिखा। चुपचाप रोती रही।

सीलोन से लौटकर प्रकाश छुट्टियों में घर गया। करुणा उससे खिंची-खिंची रहीं। प्रकाश मन में लज्जित हुआ और संकल्प किया कि अबकी कोई अवसर आया, तो अम्माँ को अवश्य प्रसन्न करूँगा। यह निश्चय करके वह विद्यालय लौटा। लेकिन यहाँ आते ही फिर परीक्षा की फ़िक्र सवार हो गयी। यहाँ तक कि परीक्षा के दिन आ गये; इम्तहान से फ़ुरसत पाकर भी प्रकाश घर न गया। विद्यालय के एक अध्यापक काश्मीर सैर करने जा रहे थे। प्रकाश उन्हीं के साथ काश्मीर चल खड़ा हुआ। जब परीक्षा-फल निकला और प्रकाश प्रथम आया, तब उसे घर की याद आयी! उसने तुरन्त करुणा को पत्र लिखा और अपने आने की सूचना दी। माता को प्रसन्न करने के लिए उसने दो-चार शब्द जाति-सेवा के विषय में भी लिखे, अब मैं आपकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हूँ। मैंने शिक्षा-सम्बन्धी कार्य करने का निश्चय किया है। इसी विचार से मैने यह विशिष्ट स्थान प्राप्त किया है। हमारे नेता भी तो विद्यालयों के आचार्यों ही का सम्मान करते हैं। अभी तक इन उपाधियों के मोह से वे मुक्त नहीं हुए हैं। यह उपाधि लेकर वास्तव में मैंने अपने सेवा-मार्ग से एक बाधा हटा दी है। हमारे नेता भी योग्यता, सदुत्साह, लगन का उतना सम्मान नहीं करते, जितना उपाधियों का! अब सब मेरी इज़्ज़त करेंगे और ज़िम्मेदारी का काम सौंपेंगे, जो पहले माँगे भी न मिलता।

करुणा की आस फिर बँधी।

...

विद्यालय खुलते ही प्रकाश के नाम रजिस्ट्रार का पत्र पहुँचा। उन्होंने प्रकाश को इंग्लैंड जाकर विद्याभ्यास करने के लिए सरकारी वज़ीफ़े की मंज़ूरी की सूचना दी थी। प्रकाश पत्र हाथ में लिये हर्ष के उन्माद में जाकर माँ से बोला — अम्माँ, मुझे इंग्लैंड जाकर पढ़ने के लिए सरकारी वज़ीफ़ा मिल गया।

करुणा ने उदासीन भाव से पूछा — तो तुम्हारा क्या इरादा है?

प्रकाश — मेरा इरादा? ऐसा अवसर पाकर भला कौन छोड़ता है!

करुणा — तुम तो स्वयंसेवकों में भरती होने जा रहे थे?

प्रकाश — तो क्या आप समझती हैं, स्वयंसेवक बन जाना ही जाति-सेवा है? मैं इंग्लैंड से आकर भी तो सेवा-कार्य कर सकता हूँ और अम्माँ, सच पूछो, तो एक मजिस्ट्रेट अपने देश का जितना उपकार कर सकता है, उतना एक हज़ार स्वयंसेवक मिलकर भी नहीं कर सकते। मैं तो सिविल सर्विस की परीक्षा में बैठूँगा और मुझे विश्वास है कि सफल हो जाऊँगा।

करुणा ने चकित होकर पूछा — तो क्या तुम मजिस्ट्रेट हो जाओगे?

प्रकाश — सेवा-भाव रखनेवाला एक मजिस्ट्रेट कांग्रेस के एक हज़ार सभापतियों से ज़्यादा उपकार कर सकता है। अख़बारों में उसकी लम्बी-लम्बी तारीफ़ें न छपेंगी, उसकी वक्तृताओं पर तालियाँ न बजेंगी, जनता उसके जुलूस की गाड़ी न खींचेगी और न विद्यालयों के छात्र उसको अभिनंदन-पत्र देंगे; पर सच्ची सेवा मजिस्ट्रेट ही कर सकता है।

करुणा ने आपत्ति के भाव से कहा — लेकिन यही मजिस्ट्रेट तो जाति के सेवकों को सज़ाएँ देते हैं, उन पर गोलियाँ चलाते हैं?

प्रकाश — अगर मजिस्ट्रेट के हृदय में परोपकार का भाव है, तो वह नरमी से वही काम करता है, जो दूसरे गोलियाँ चलाकर भी नहीं कर सकते।

करुणा — मैं यह नहीं मानूँगी। सरकार अपने नौकरों को इतनी स्वाधीनता नहीं देती। वह एक नीति बना देती है और हर एक सरकारी नौकर को उसका पालन करना पड़ता है। सरकार की पहली नीति यह है कि वह दिन-दिन अधिक संगठित और दृढ़ हों। इसके लिए स्वाधीनता के भावों का दमन करना ज़रूरी है; अगर कोई मजिस्ट्रेट इस नीति के विरुद्ध काम करता है, तो वह मजिस्ट्रेट न रहेगा। वह हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेट था, जिसने तुम्हारे बाबूजी को ज़रा-सी बात पर तीन साल की सज़ा दे दी। इसी सज़ा ने उनके प्राण लिये। बेटा, मेरी इतनी बात मान। सरकारी पदों पर न गिरो। मुझे यह मंज़ूर है कि तुम मोटा खाकर और मोटा पहनकर देश की कुछ सेवा करो, इसके बदले कि तुम हाकिम बन जाओ और शान से जीवन बिताओ। यह समझ लो कि जिस दिन तुम हाकिम की कुरसी पर बैठोगे, उस दिन से तुम्हारा दिमाग हाकिमों का-सा हो जाएगा। तुम यही चाहोगे कि अफसरों में तुम्हारी नेकनामी और तरक्क़ी हो। एक गँवारू मिसाल लो। लड़की जब तक मैके में क्वाँरी रहती है, वह अपने को उसी घर की समझती है, लेकिन जिस दिन ससुराल चली जाती है, वह अपने घर को दूसरों का घर समझने लगती है। माँ-बाप, भाई-बंद सब

वही रहते हैं, लेकिन वह घर अपना नहीं रहता। यही दुनिया का दस्तूर है।

प्रकाश ने खीझकर कहा — तो क्या आप यही चाहती हैं कि मैं ज़िन्दगी-भर चारों तरफ़ ठोकरें खाता फिरूँ?

करुणा कठोर नेत्रों से देखकर बोली — अगर ठोकर खाकर आत्मा स्वाधीन रह सकती है, तो मैं कहूँगी, ठोकर खाना अच्छा है।

प्रकाश ने निश्चयात्मक भाव से पूछा — तो आपकी यही इच्छा है?

करुणा ने उसी स्वर में उत्तर दिया — हाँ, मेरी यही इच्छा है।

प्रकाश ने कुछ जवाब न दिया। उठकर बाहर चला गया और तुरन्त रजिस्ट्रार को इनकारी-पत्र लिख भेजा। मगर उसी क्षण से मानो उसके सिर पर विपत्ति ने आसन जमा लिया। विरक्त और विमन अपने कमरे में पड़ा रहता, न कहीं घूमने जाता, न किसी से मिलता। मुँह लटकाये भीतर आता और फिर बाहर चला जाता, यहाँ तक कि एक महीना गुज़र गया। न चेहरे पर वह लाली रही, न वह ओज; आँखें अनाथों के मुख की भाँति याचना से भरी हुई, ओठ हँसना भूल गये, मानो उस इनकारी-पत्र के साथ उसकी सारी सजीवता और चपलता, सारी सरसता बिदा हो गयी। करुणा उसके मनोभाव समझती थी और उसके शोक को भुलाने की चेष्टा करती थी, पर रूठे देवता प्रसन्न न होते थे।

आख़िर एक दिन उसने प्रकाश से कहा — बेटा, अगर तुमने विलायत जाने की ठान ही ली है, तो चले जाओ। मैं मना न करूँगी। मुझे खेद है कि मैंने तुम्हें रोका। अगर मैं जानती कि तुम्हें इतना आघात पहुँचेगा, तो कभी न रोकती। मैंने तो केवल इस विचार से रोका था कि तुम्हें जाति-सेवा में मग्न देखकर तुम्हारे बाबूजी की आत्मा प्रसन्न होगी। उन्होंने चलते समय यही वसीयत की थी।

प्रकाश ने रुखाई से जवाब दिया — अब क्या जाऊँगा! इनकारी-खत लिख चुका। मेरे लिए कोई अब तक बैठा थोड़े ही होगा। कोई दूसरा लड़का चुन लिया होगा। और फिर करना ही क्या है? जब आपकी मर्ज़ी है कि गाँव-गाँव की ख़ाक छानता फिरूँ, तो वही सही।

करुणा का गर्व चूर-चूर हो गया। इस अनुमति से उसने बाधा का काम लेना चाहा था; पर सफल न हुई। बोली — अभी कोई न चुना गया होगा। लिख दो, मैं जाने को तैयार हूँ।

प्रकाश ने झुँझलाकर कहा — अब कुछ नहीं हो सकता। लोग हँसी उड़ायेंगे। मैंने तय कर लिया है कि जीवन को आपकी इच्छा के अनुकूल बनाऊँगा।

करुणा — तुमने अगर शुद्ध मन से यह इरादा किया होता, तो यों न रहते। तुम मुझसे

सत्याग्रह कर रहे हो; अगर मन को दबाकर, मुझे अपनी राह का काँटा समझकर, तुमने मेरी इच्छा पूरी भी की, तो क्या? मैं तो जब जानती कि तुम्हारे मन में आप-ही-आप सेवा का भाव उत्पन्न होता। तुम आज ही रजिस्ट्रार साहब को पत्र लिख दो।

प्रकाश — अब मैं नहीं लिख सकता।

'तो इसी शोक में तने बैठे रहोगे?'

'लाचारी है।'

करुणा ने और कुछ न कहा। ज़रा देर में प्रकाश ने देखा कि वह कहीं जा रही है; मगर वह कुछ बोला नहीं। करुणा के लिए बाहर आना-जाना कोई असाधारण बात न थी; लेकिन जब संध्या हो गयी और करुणा न आयी, तो प्रकाश को चिन्ता होने लगी। अम्माँ कहाँ गयीं? यह प्रश्न बार-बार उसके मन में उठने लगा।

प्रकाश सारी रात द्वार पर बैठा रहा। भाँति-भाँति की शंकाएँ मन में उठने लगीं। उसे अब याद आया, चलते समय करुणा कितनी उदास थी; उसकी आँखें कितनी लाल थी। यह बातें प्रकाश को उस समय क्यों न नज़र आयीं? वह क्यों स्वार्थ में अंधा हो गया था?

हाँ, अब प्रकाश को याद आया — माता ने साफ-सुथरे कपड़े पहने थे। उनके हाथ में छतरी भी थी। तो क्या वह कहीं बहुत दूर गयी हैं? किससे पूछे? अनिष्ट के भय से प्रकाश रोने लगा।

श्रावण की अंधेरी भयानक रात थी। आकाश में श्याम मेघमालाएँ, भीषण स्वप्न की भाँति छायी हुई थीं। प्रकाश रह-रहकर आकाश की ओर देखता था, मानो करुणा उन्हीं मेघमालाओं में छिपी बैठी हो। उसने निश्चय किया, सवेरा होते ही माँ को खोजने चलूँगा और अगर....

किसी ने द्वार खटखटाया। प्रकाश ने दौड़कर खोला तो देखा, करुणा खड़ी है। उसका मुख-मंडल इतना खोया हुआ, इतना करुण था, जैसे आज ही उसका सोहाग उठ गया है, जैसे संसार में अब उसके लिए कुछ नहीं रहा, जैसे वह नदी के किनारे खड़ी अपनी लदी हुई नाव को डूबते देख रही है और कुछ कर नहीं सकती।

प्रकाश ने अधीर होकर पूछा — अम्माँ कहाँ चली गयी थीं? बहुत देर लगायी?

करुणा ने भूमि की ओर ताकते हुए जवाब दिया — एक काम से गयी थी। देर हो गयी।

यह कहते हुए उसने प्रकाश के सामने एक बंद लिफ़ाफा फेंक दिया। प्रकाश ने उत्सुक होकर लिफ़ाफा उठा लिया। ऊपर ही विद्यालय की मुहर थी। तुरन्त ही लिफ़ाफा खोलकर पढ़ा।

हलकी-सी लालिमा चेहरे पर दौड़ गयी। पूछा — यह तुम्हें कहाँ मिल गया, अम्माँ?

करुणा — तुम्हारे रजिस्ट्रार के पास से लायी हूँ।

'क्या तुम वहाँ चली गयी थीं?'

'और क्या करती।'

'कल तो गाड़ी का समय न था?'

'मोटर ले ली थी।'

प्रकाश एक क्षण तक मौन खड़ा रहा, फिर कुंठित स्वर में बोला — जब तुम्हारी इच्छा नहीं है तो मुझे क्यों भेज रही हो?

करुणा ने विरक्त भाव से कहा — इसलिए कि तुम्हारी जाने की इच्छा है। तुम्हारा यह मलिन वेश नहीं देखा जाता। अपने जीवन के बीस वर्ष तुम्हारी हितकामना पर अर्पित कर दिये; अब तुम्हारी महत्त्वाकांक्षा की हत्या नहीं कर सकती। तुम्हारी यात्रा सफल हो, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।

करुणा का कंठ रूँध गया और कुछ न कह सकी।

...

प्रकाश उसी दिन से यात्रा की तैयारियाँ करने लगा। करुणा के पास जो कुछ था, वह सब ख़र्च हो गया। कुछ ऋण भी लेना पड़ा। नये सूट बने, सूटकेस लिए गये। प्रकाश अपनी धुन में मस्त था। कभी किसी चीज़ की फ़रमाइश लेकर आता, कभी किसी चीज़ की।

करुणा इस एक सप्ताह में इतनी दुर्बल हो गयी है, उसके बालों पर कितनी सफ़ेदी आ गयी है, चेहरे पर कितनी झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, यह उसे कुछ न नज़र आता। उसकी आँखों में इंग्लैंड के दृश्य समाये हुए थे। महत्त्वाकांक्षा आँखों पर परदा डाल देती है।

प्रस्थान का दिन आया। आज कई दिनों के बाद धूप निकली थी। करुणा स्वामी के पुराने कपड़ों को बाहर निकाल रही थी। उनकी गाढ़े की चादरें, खद्दर के कुरते, पाजामें और लिहाफ अभी तक सन्दूक में संचित थे। प्रतिवर्ष वे धूप में सुखाये जाते और झाड़-पोंछकर रख दिये जाते थे। करुणा ने आज फिर उन कपड़ों को निकाला, मगर सुखाकर रखने के लिए नहीं, गरीबों में बाँट देने के लिए। वह आज पति से नाराज़ है। वह लुटिया, डोर और घड़ी, जो आदित्य की चिरसंगिनी थीं और जिनकी बीस वर्ष से करुणा ने उपासना की थी, आज निकालकर आँगन में फेंक दी गयी; वह झोली जो बरसों आदित्य के कन्धों पर आरूढ़

रह चुकी थी, आज कूड़े में डाल दी गयी; वह चित्र जिसके सामने बीस वर्ष से करुणा सिर झुकाती थी, आज वही निर्दयता से भूमि पर डाल दिया गया। पति का कोई स्मृति-चिन्ह वह अब अपने घर में नहीं रखना चाहती। उसका अंतःकरण शोक और निराशा से विदीर्ण हो गया है और पति के सिवा वह किस पर क्रोध उतारे? कौन उसका अपना हैं? वह किससे अपनी व्यथा कहे? किसे अपनी छाती चीरकर दिखाए? वह होते तो क्या प्रकाश दासता की ज़ंजीर गले में डालकर फूला न समाता? उसे कौन समझाये कि आदित्य भी इस अवसर पर पछताने के सिवा और कुछ न कर सकते।

प्रकाश के मित्रों ने आज उसे विदाई का भोज दिया था। वहाँ से वह संध्या समय कई मित्रों के साथ मोटर पर लौटा। सफर का सामान मोटर पर रख दिया गया, तब वह अन्दर आकर माँ से बोला — अम्माँ, जाता हूँ। बम्बई पहुँचकर पत्र लिखूँगा। तुम्हें मेरी कसम, रोना मत और मेरे खतों का जवाब बराबर देना।

जैसे किसी लाश को बाहर निकालते समय सम्बन्धियों का धैर्य छूट जाता है, रुके हुए आँसू निकल पड़ते हैं और शोक की तरंगें उठने लगती हैं, वही दशा करुणा की हुई। कलेजे में एक हाहाकार हुआ, जिसने उसकी दुर्बल आत्मा के एक-एक अणु को कंपा दिया। मालूम हुआ, पाँव पानी में फिसल गया है और वह लहरों में बही जा रही है। उसके मुख से शोक या आशीर्वाद का एक शब्द भी न निकला। प्रकाश ने उसके चरण छुए, अश्रु-जल से माता के चरणों को पखारा, फिर बाहर चला। करुणा पाषाण मूर्ति की भाँति खड़ी थी।

सहसा ग्वाले ने आकर कहा — बहूजी, भइया चले गये। बहुत रोते थे।

तब करुणा की समाधि टूटी। देखा, सामने कोई नहीं है। घर में मृत्यु का-सा सन्नाटा छाया हुआ है, और मानो हृदय की गति बन्द हो गयी है।

सहसा करुणा की दृष्टि ऊपर उठ गयी। उसने देखा कि आदित्य अपनी गोद में प्रकाश की निर्जीव देह लिए खड़े हो रहे हैं। करुणा पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

...

करुणा जीवित थी, पर संसार से उसका कोई नाता न था। उसका छोटा-सा संसार, जिसे उसने अपनी कल्पनाओं के हृदय में रचा था, स्वप्न की भाँति अनन्त में विलीन हो गया था। जिस प्रकाश को सामने देखकर वह जीवन की अंधेरी रात में भी, हृदय में आशाओं की सम्पत्ति लिये जी रही थी, वह बुझ गया और सम्पत्ति लुट गयी। अब न कोई आश्रय था और न उसकी ज़रूरत। जिन गउओं को वह दोनों वक्त अपने हाथों से दाना-चारा देती और सहलाती थी, वे अब खूँटे पर बँधी, निराश नेत्रों से द्वार की ओर ताकती रहती थीं। बछड़ों को गले लगाकर पुचकारने वाला अब कोई न था। किसके लिए दूध दुहे, मट्ठा निकाले? खानेवाला कौन था? करुणा ने अपने छोटे-से संसार को अपने ही अंदर समेट लिया था।

किन्तु एक ही सप्ताह में करुणा के जीवन ने फिर रंग बदला। उसका छोटा-सा संसार फैलते-फैलते विश्वव्यापी हो गया। जिस लंगर ने नौका को तट से एक केन्द्र पर बाँध रखा था, वह उखड़ गया। अब नौका सागर के अशेष विस्तार में भ्रमण करेगी, चाहे वह उद्दाम तरंगों के वक्ष में ही क्यों न विलीन हो जाए।

करुणा द्वार पर आ बैठती और मुहल्ले-भर के लड़कों को जमा करके दूध पिलाती। दोपहर तक मक्खन निकालती और वह मक्खन मुहल्ले के लड़के खाते। फिर भाँति-भाँति के पकवान बनाती और कुत्तों को खिलाती। अब यही उसका नित्य का नियम हो गया। चिड़ियाँ, कुत्ते, बिल्लियाँ, चींटे-चीटियाँ सब अपने हो गये। प्रेम का वह द्वार अब किसी के लिए बन्द न था। उस अंगुल-भर जगह में, जो प्रकाश के लिए भी काफ़ी न थी, अब समस्त संसार समा गया था।

एक दिन प्रकाश का पत्र आया। करुणा ने उसे उठाकर फ़ेंक दिया। फिर थोड़ी देर के बाद उसे उठाकर फाड़ डाला और चिड़ियों को दाना चुगाने लगी; मगर जब निशा-योगिनी ने अपनी धूनी जलायी और वेदनाएँ उससे वरदान माँगने के लिए विकल हो-होकर चलीं, तो करुणा की मनोवेदना भी सजग हो उठी — प्रकाश का पत्र पढ़ने के लिए उसका मन व्याकुल हो उठा। उसने सोचा, प्रकाश मेरा कौन है? मेरा उससे क्या प्रयोजन? हाँ, प्रकाश मेरा कौन है? हृदय ने उत्तर दिया, प्रकाश तेरा सर्वस्व है, वह तेरे उस अमर प्रेम की निशानी है, जिससे तू सदैव के लिए वंचित हो गयी। वह तेरे प्राणों का प्राण है, तेरे जीवन-दीपक का प्रकाश, तेरी संचित कामनाओं का माधुर्य, तेरे अश्रु-जल में विहार करने वाला हँस। करुणा उस पत्र के टुकड़ों को जमा करने लगी, मानो उसके प्राण बिखर गये हों। एक-एक टुकड़ा उसे अपने खोये हुए प्रेम का एक पदचिन्ह-सा मालूम होता था। जब सारे पुरज़े जमा हो गये, तो करुणा दीपक के सामने बैठकर उसे जोड़ने लगी, जैसे कोई वियोगी हृदय प्रेम के टूटे हुए तारों को जोड़ रहा हो। हाय री ममता! वह अभागिन सारी रात उन पुरज़ों को जोड़ने में लगी रही। पत्र दोनों ओर लिखा हुआ था, इसलिए पुरज़ों को ठीक स्थान पर रखना और भी कठिन था। कोई शब्द, कोई वाक्य बीच में ग़ायब हो जाता। उस एक टुकड़े को वह फिर खोजने लगती। सारी रात बीत गयी, पर पत्र अभी तक अपूर्ण था।

दिन चढ़ आया, मुहल्ले के लौंडे मक्खन और दूध की चाह में एकत्र हो गये, कुत्तों और बिल्लियों का आगमन हुआ, चिड़ियाँ आ-आकर आँगन में फुदकने लगीं, कोई ओखली पर बैठी, कोई तुलसी के चौतरे (चबूतरा) पर; पर करुणा को सिर उठाने तक की फ़ुरसत नहीं।

दोपहर हुई, करुणा ने सिर न उठाया। न भूख थी, न प्यास। फिर संध्या हो गयी। पर वह पत्र अभी तक अधूरा था। पत्र का आशय समझ में आ रहा था- प्रकाश का जहाज़ कहीं-से-कहीं जा रहा है। उसके हृदय में कुछ उठा हुआ है। क्या उठा हुआ है, यह करुणा न सोच सकी? करुणा पुत्र की लेखनी से निकले हुए एक-एक शब्द को पढ़ना और उसे हृदय पर अंकित कर लेना चाहती थी।

इस भाँति तीन दिन गुज़र गये। संध्या हो गयी थी। तीन दिन की जागी आँखें ज़रा झपक गयीं। करुणा ने देखा, एक लम्बा-चौड़ा कमरा है, उसमें मेज़ें और कुर्सियाँ लगी हुई हैं, बीच में ऊँचे मंच पर कोई आदमी बैठा हुआ है। करुणा ने ध्यान से देखा, प्रकाश था।

एक क्षण में एक कैदी उसके सामने लाया गया, उसके हाथ-पाँव में ज़ंजीर थी, कमर झुकी हुई, यह आदित्य थे।

करुणा की आँखें खुल गयीं। आँसू बहने लगे। उसने पत्र के टुकड़ों को फिर समेट लिया और उसे जलाकर राख कर डाला। राख की एक चुटकी के सिवा वहाँ कुछ न रहा, जो उसके हृदय को विदीर्ण किए डालती थी। इसी एक चुटकी राख में उसका गुड़ियोंवाला बचपन, उसका संतप्त यौवन और उसका तृष्णामय वैधव्य सब समा गया।

प्रातःकाल लोगों ने देखा, पक्षी पिंजरे से उड़ चुका था! आदित्य का चित्र अब भी उसके शून्य हृदय से चिपटा हुआ था। वह भग्नहृदय पति की स्नेह-स्मृति में विश्राम कर रहा था और प्रकाश का जहाज़ योरप चला जा रहा था।

...

घासवाली

मुलिया हरी-हरी घास का गट्ठा लेकर आयी, तो उसका गेहुआँ रंग कुछ तमतमाया हुआ था और बड़ी-बड़ी मद-भरी आँखों में शंका समाई हुई थी। महावीर ने उसका तमतमाया हुआ चेहरा देखकर पूछा — क्या है मुलिया, आज कैसा जी है?

मुलिया ने कुछ जवाब न दिया, उसकी आँखें डबडबा गयीं!

महावीर ने समीप आकर पूछा — क्या हुआ है, बताती क्यों नहीं? किसी ने कुछ कहा है, अम्माँ ने डाँटा है, क्यों इतनी उदास है?

मुलिया ने सिसककर कहा — कुछ नहीं, हुआ क्या है, अच्छी तो हूँ।

महावीर ने मुलिया को सिर से पाँव तक देखकर कहा — चुपचाप रोयेगी, बतायेगी नहीं?

मुलिया ने बात टालकर कहा — कोई बात भी हो, क्या बताऊँ?

मुलिया इस ऊसर में गुलाब का फूल थी। गेहुआँ रंग था, हिरन की-सी आँखें, नीचे खिंचा हुआ चिबुक, कपोलों पर हलकी लालिमा, बड़ी-बड़ी नुकीली पलकें, आँखों में एक विचित्र आर्द्रता, जिसमें एक स्पष्ट वेदना, एक मूक व्यथा झलकती रहती थी। मालूम नहीं, चमारों के इस घर में यह अप्सरा कहाँ से आ गयी थी। क्या उसका कोमल फूल-सा गात इस योग्य था कि सर पर घास की टोकरी रखकर घास बेचने जाती? उस गाँव में भी ऐसे लोग मौजूद थे, जो उसके तलवे के नीचे आँखें बिछाते थे, उसकी एक चितवन के लिए तरसते थे, जिनसे अगर वह एक शब्द भी बोलती, तो निहाल हो जाते, लेकिन उसे आये साल-भर से अधिक हो गया, किसी ने उसे युवकों की तरफ़ ताकते या बातें करते नहीं देखा। वह घास लिये निकलती, तो ऐसा मालूम होता, मानो ऊषा का प्रकाश, सुनहरे आवरण में रंजित, अपनी छटा बिखेरता जाता हो। कोई गज़लें गाता, कोई छाती पर हाथ रखता; पर मुलिया नीची आँख किये अपनी राह चली जाती। लोग हैरान होकर कहते — इतना अभिमान! महावीर में ऐसे क्या सुरखाब के पर लगे हैं, ऐसा अच्छा जवान भी तो नहीं, न जाने यह कैसे उसके साथ रहती है!

मगर आज ऐसी बात हो गयी, जो इस जाति की और युवतियों के लिए चाहे गुप्त संदेश होती, मुलिया के लिए हृदय का शूल थी। प्रभात का समय था, पवन आम की बौर की सुगंध से मतवाला हो रहा था, आकाश पृथ्वी पर सोने की वर्षा कर रहा था। मुलिया सिर पर झौआ (टोकरा) रक्खे घास छीलने चली, तो उसका गेहुआँ रंग प्रभात की सुनहरी किरणों से कुंदन की तरह दमक उठा। एकाएक युवक चैनसिंह सामने से आता हुआ दिखाई

दिया। मुलिया ने चाहा कि कतराकर निकल जाये; मगर चैनसिंह ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोला — मुलिया, तुझे क्या मुझ पर ज़रा भी दया नहीं आती?

मुलिया का वह फूल-सा खिला हुआ चेहरा ज्वाला की तरह दहक उठा। वह ज़रा भी नहीं डरी, ज़रा भी न झिझकी, झौआ ज़मीन पर गिरा दिया, और बोली — मुझे छोड़ दो, नहीं मैं चिल्लाती हूँ।

चैनसिंह को आज जीवन में एक नया अनुभव हुआ। नीची जातों में रूप-माधुर्य का इसके सिवा और काम ही क्या है कि वह ऊँची जातवालों का खिलौना बने। ऐसे कितने ही मार्के उसने जीते थे; पर आज मुलिया के चेहरे का वह रंग, उसका वह क्रोध, वह अभिमान देखकर उसके छक्के छूट गये। उसने लज्जित होकर उसका हाथ छोड़ दिया। मुलिया वेग से आगे बढ़ गयी। संघर्ष की गरमी में चोट की व्यथा नहीं होती, पीछे से टीस होने लगती है। मुलिया जब कुछ दूर निकल गयी, तो क्रोध और भय तथा अपनी बेकसी को अनुभव करके उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने कुछ देर ज़ब्त किया, फिर सिसक-सिसक कर रोने लगी। अगर वह इतनी गरीब न होती, तो किसी की मजाल थी कि इस तरह उसका अपमान करता! वह रोती जाती थी और घास छीलती जाती थी। महावीर का क्रोध वह जानती थी। अगर उससे कह दे, तो वह इस ठाकुर के खून का प्यासा हो जायेगा। फिर न जाने क्या हो! इस ख़याल से उसके रोएँ खड़े हो गये। इसीलिए उसने महावीर के प्रश्नों का कोई उत्तर न दिया।

...

दूसरे दिन मुलिया घास के लिए न गयी। सास ने पूछा — तू क्यों नहीं जाती? और सब तो चली गयीं?

मुलिया ने सिर झुकाकर कहा — मैं अकेली न जाऊँगी।

सास ने बिगड़कर कहा — अकेले क्या तुझे बाघ उठा ले जायेगा?

मुलिया ने और भी सिर झुका लिया और दबी हुई आवाज़ से बोली — सब मुझे छेड़ते हैं।

सास ने डाँटा — न तू औरों के साथ जायेगी, न अकेली जायेगी, तो फिर जायेगी कैसे! यह साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती कि मैं न जाऊँगी। तो यहाँ मेरे घर में रानी बन के निबाह न होगा। किसी को चाम नहीं प्यारा होता, काम प्यारा होता है। तू बड़ी सुंदर है, तो तेरी सुंदरता लेकर चाटूँ? उठा झाबा और घास ला!

द्वार पर नीम के दरख़्त के साये में महावीर खड़ा घोड़े को मल रहा था। उसने मुलिया को रोनी सूरत बनाये जाते देखा; पर कुछ बोल न सका। उसका बस चलता तो मुलिया को

कलेजे में बिठा लेता, आँखों में छिपा लेता; लेकिन घोड़े का पेट भरना तो ज़रूरी था। घास मोल लेकर खिलाये, तो बारह आने रोज़ से कम न पड़े। ऐसी मज़दूरी ही कौन होती है। मुश्किल से डेढ़-दो रुपये मिलते हैं, वह भी कभी मिले, कभी न मिले। जब से यह सत्यानाशी लारियाँ चलने लगी हैं; एक्केवालों की बधिया बैठ गयी है। कोई सेंत भी नहीं पूछता। महाजन से डेढ़-सौ रुपये उधार लेकर एक्का और घोड़ा खरीदा था; मगर लारियों के आगे एक्के को कौन पूछता है। महाजन का सूद भी तो न पहुँच सकता था, मूल का कहना ही क्या! ऊपरी मन से बोला — न मन हो, तो रहने दे, देखी जायेगी।

इस दिलजोई से मुलिया निहाल हो गयी। बोली — घोड़ा खायेगा क्या?

आज उसने कल का रास्ता छोड़ दिया और खेतों की मेड़ों से होती हुई चली। बार-बार सतर्क आँखों से इधर-उधर ताकती जाती थी। दोनों तरफ़ ऊख के खेत खड़े थे। ज़रा भी खड़खड़ाहट होती, उसका जी सन्न हो जाता; कहीं कोई ऊख में छिपा न बैठा हो। मगर कोई नयी बात न हुई। ऊख के खेत निकल गये, आमों का बाग निकल गया; सिंचे हुए खेत नज़र आने लगे। दूर के कुएँ पर पुर चल रहा था। खेतों की मेड़ों पर हरी-हरी घास जमी हुई थी। मुलिया का जी ललचाया। यहाँ आध घंटे में जितनी घास छिल सकती है, सूखे मैदान में दोपहर तक न छिल सकेगी! यहाँ देखता ही कौन है। कोई चिल्लायेगा, तो चली जाऊँगी। वह बैठकर घास छीलने लगी और एक घंटे में उसका झाबा आधे से ज़्यादा भर गया। वह अपने काम में इतनी तन्मय थी कि उसे चैनसिंह के आने की ख़बर ही न हुई। एकाएक उसने आहट पाकर सिर उठाया, तो चैनसिंह को खड़ा देखा।

मुलिया की छाती धक् से हो गयी। जी में आया, भाग जाये, झाबा उलट दे और खाली झाबा लेकर चली जाये, पर चैनसिंह ने कई गज़ के फ़ासले से ही रुककर कहा — डर मत, डर मत, भगवान जानता है! मैं तुझसे कुछ न बोलूँगा। जितनी घास चाहे, छील ले, मेरा ही खेत है।

मुलिया के हाथ सुन्न हो गये, खुरपी हाथ में जम-सी गयी, घास नज़र ही न आती थी। जी चाहता था; ज़मीन फट जाये और मैं समा जाऊँ। ज़मीन आँखों के सामने तैरने लगी।

चैनसिंह ने आश्वासन दिया — छीलती क्यों नहीं? मैं तुमसे कुछ कहता थोड़े ही हूँ। यहीं रोज़ चली आया कर, मैं छील दिया करूँगा।

मुलिया चित्रलिखित-सी बैठी रही।

चैनसिंह ने एक कदम आगे बढ़ाया और बोला — तू मुझसे इतना डरती क्यों है! क्या तू समझती है, मैं आज भी तुझे सताने आया हूँ? ईश्वर जानता है, कल भी तुझे सताने के लिए मैंने तेरा हाथ नहीं पकड़ा था। तुझे देखकर आप-ही-आप हाथ बढ़ गये। मुझे कुछ सुध ही न रही। तू चली गयी, तो मैं वहीं बैठकर घंटों रोता रहा। जी में आता था, हाथ काट डालूँ।

कभी जी चाहता था, ज़हर खा लूँ। तभी से तुझे ढूँढ़ रहा हूँ; आज तू इस रास्ते से चली आयी। मैं सारा हार छानता हुआ यहाँ आया हूँ। अब जो सज़ा तेरे जी में आवे, दे दे। अगर तू मेरा सिर भी काट ले, तो गर्दन न हिलाऊँगा। मैं शोहदा था, लुच्चा था, लेकिन जब से तुझे देखा है, मेरे मन से सारी खोट मिट गयी है। अब तो यही जी में आता है कि तेरा कुत्ता होता और तेरे पीछे-पीछे चलता, तेरा घोड़ा होता, तब तो तू अपने हाथों से मेरे सामने घास डालती। किसी तरह यह चोला तेरे काम आवे, मेरे मन की यह सबसे बड़ी लालसा है। मेरी जवानी काम न आवे, अगर मैं किसी खोट से ये बातें कर रहा हूँ। बड़ा भागवान था महावीर, जो ऐसी देवी उसे मिली।

मुलिया चुपचाप सुनती रही, फिर नीचा सिर करके भोलेपन से बोली — तो तुम मुझे क्या करने को कहते हो?

चैनसिंह और समीप आकर बोला — बस, तेरी दया चाहता हूँ।

मुलिया ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा। उसकी लज्जा न जाने कहाँ गायब हो गयी। चुभते हुए शब्दों में बोली — तुमसे एक बात कहूँ, बुरा तो न मानोगे? तुम्हारा ब्याह हो गया है या नहीं?

चैनसिंह ने दबी ज़बान से कहा — ब्याह तो हो गया, लेकिन ब्याह क्या है, खिलवाड़ है।

मुलिया के होठों पर अवहेलना की मुसकराहट झलक पड़ी, बोली — फिर भी अगर महावीर तुम्हारी औरत से इसी तरह बातें करता, तो तुम्हें कैसा लगता? तुम उसकी गर्दन काटने पर तैयार हो जाते कि नहीं? बोलो! क्या समझते हो कि महावीर चमार है तो उसकी देह में लहू नहीं है, उसे लज्जा नहीं है, अपनी मर्यादा का विचार नहीं है? मेरा रूप-रंग तुम्हें भाता है। क्या घाट के किनारे मुझसे कहीं सुंदर औरतें नहीं घूमा करतीं? मैं उनके तलवों की बराबरी भी नहीं कर सकती। तुम उनमें से किसी से क्यों नहीं दया माँगते! क्या उनके पास दया नहीं है? मगर वहाँ तुम न जाओगे, क्योंकि वहाँ जाते तुम्हारी छाती दहलती है। मुझसे दया माँगते हो, इसलिए न कि मैं चमारिन हूँ, नीच जाति हूँ और नीच जाति की औरत ज़रा-सी घुड़की-धमकी या ज़रा-सी लालच से तुम्हारी मुट्ठी में आ जायेगी। कितना सस्ता सौदा है। ठाकुर हो न, ऐसा सस्ता सौदा क्यों छोड़ने लगे?

चैनसिंह लज्जित होकर बोला — मूला, यह बात नहीं। मैं सच कहता हूँ, इसमें ऊँच-नीच की बात नहीं है। सब आदमी बराबर हैं। मैं तो तेरे चरणों पर सिर रखने को तैयार हूँ।

मुलिया — इसीलिए न कि जानते हो, मैं कुछ कर नहीं सकती। जाकर किसी खतरानी के चरणों पर सिर रक्खो, तो मालूम हो कि चरणों पर सिर रखने का क्या फल मिलता है। फिर यह सिर तुम्हारी गर्दन पर न रहेगा।

चैनसिंह मारे शर्म के ज़मीन में गड़ा जाता था। उसका मुँह ऐसा सूख गया था, मानो महीनों की बीमारी से उठा हो। मुँह से बात न निकलती थी। मुलिया इतनी वाक्-पटु है, इसका उसे गुमान भी न था।

मुलिया फिर बोली — मैं भी रोज़ बाज़ार जाती हूँ। बड़े-बड़े घरों का हाल जानती हूँ। मुझे किसी बड़े घर का नाम बता दो, जिसमें कोई साईस, कोई कोचवान, कोई कहार, कोई पंडा, कोई महाराज न घुसा बैठा हो? यह सब बड़े घरों की लीला है। और वह औरतें जो कुछ करती हैं, ठीक करती हैं। उनके घरवाले भी तो चमारिनों और कहारिनों पर जान देते फिरते हैं। लेना-देना बराबर हो जाता है। बेचारे गरीब आदमियों के लिए यह बातें कहाँ? महावीर के लिए संसार में जो कुछ हूँ, मैं हूँ। वह किसी दूसरी मिहरिया की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता। संयोग की बात है कि मैं तनिक सुंदर हूँ, लेकिन मैं काली-कलूटी भी होती, तब भी महावीर मुझे इसी तरह रखता। इसका मुझे विश्वास है। मैं चमारिन होकर भी इतनी नीच नहीं हूँ कि विश्वास का बदला खोट से दूँ। हाँ, महावीर अपने मन की करने लगे, मेरी छाती पर मूँग दलने लगे, तो मैं भी उसकी छाती पर मूँग दलूँगी। तुम मेरे रूप ही के दीवाने हो न! आज मुझे माता निकल आये, कानी हो जाऊँ, तो मेरी ओर ताकोगे भी नहीं। बोलो, झूठ कहती हूँ?

चैनसिंह इनकार न कर सका।

मुलिया ने उसी गर्व से भरे हुए स्वर में कहा — लेकिन मेरी एक नहीं, दोनों आँखें फूट जायें, तब भी वह मुझे इसी तरह रक्खेगा। मुझे उठावेगा, बैठावेगा, खिलावेगा। तुम चाहते हो, मैं ऐसे आदमी के साथ कपट करूँ? जाओ, अब मुझे कभी न छेड़ना, नहीं अच्छा न होगा।

...

जवानी जोश है, बल है, दया है, साहस है, आत्म-विश्वास है, गौरव है और वह सब कुछ, जो जीवन को पवित्र, उज्ज्वल और पूर्ण बना देता है। जवानी का नशा घमंड है, निर्दयता है, स्वार्थ है, शेखी है, विषय-वासना है, कटुता है और वह सब कुछ जो जीवन को पशुता, विकार और पतन की ओर ले जाता है। चैनसिंह पर जवानी का नशा था। मुलिया के शीतल छींटों ने नशा उतार दिया। जैसे उबलती हुई चाशनी में पानी के छींटे पड़ जाने से फेन मिट जाता है, मैल निकल जाता है और निर्मल, शुद्ध रस निकल आता है। जवानी का नशा जाता रहा, केवल जवानी रह गयी। कामिनी के शब्द जितनी आसानी से दीन और ईमान को गारत कर सकते हैं, उतनी ही आसानी से उनका उद्धार भी कर सकते हैं।

चैनसिंह उस दिन से दूसरा ही आदमी हो गया। गुस्सा उसकी नाक पर रहता था, बात-बात पर मज़दूरों को गालियाँ देना, डाँटना और पीटना उसकी आदत थी। असामी उससे थर-थर काँपते थे। मज़दूर उसे आते देखकर अपने काम में चुस्त हो जाते थे, पर ज्यों ही उसने इधर पीठ फेरी और उन्होंने चिलम पीना शुरू किया। सब दिल में उससे जलते थे, उसे गालियाँ

देते थे। मगर उस दिन से चैनसिंह इतना दयालु, इतना गंभीर, इतना सहनशील हो गया कि लोगों को आश्चर्य होता था।

कई दिन गुज़र गये थे। एक दिन संध्या समय चैनसिंह खेत देखने गया। पुर चल रहा था। उसने देखा कि एक जगह नाली टूट गयी है, और सारा पानी बहा चला जाता है। क्यारियों में पानी बिलकुल नहीं पहुँचता, मगर क्यारी बनाने वाली बुढ़िया चुपचाप बैठी है। उसे इसकी ज़रा भी फ़िक्र नहीं है कि पानी क्यों नहीं आता। पहले यह दशा देखकर चैनसिंह आपे से बाहर हो जाता। उस औरत की उस दिन की पूरी मजूरी काट लेता और पुर चलानेवालों को घुड़कियाँ जमाता, पर आज उसे क्रोध नहीं आया। उसने मिट्टी लेकर नाली बांध दी और खेत में जाकर बुढ़िया से बोला — तू यहाँ बैठी है और पानी सब बहा जा रहा है।

बुढ़िया घबड़ाकर बोली — अभी खुल गयी होगी राजा! मैं अभी जाकर बंद किये देती हूँ।

यह कहती हुई वह थरथर काँपने लगी। चैनसिंह ने उसकी दिलजोई करते हुए कहा — भाग मत, भाग मत। मैंने नाली बंद कर दी। बुढ़ऊ कई दिन से नहीं दिखाई दिये, कहीं काम पर जाते हैं कि नहीं?

बुढ़िया गद्‌गद् होकर बोली — आजकल तो खाली ही बैठे हैं भैया, कहीं काम नहीं लगता।

चैनसिंह ने नम्र भाव से कहा — तो हमारे यहाँ लगा दे। थोड़ा-सा सन रखा है, उसे कात दें।

यह कहता हुआ वह कुएँ की ओर चला गया। वहाँ चार पुर चल रहे थे; पर इस वक्त दो हँकवे बेर खाने गये थे। चैनसिंह को देखते ही मजूरों के होश उड़ गये। ठाकुर ने पूछा, दो आदमी कहाँ गये, तो क्या जवाब देंगे? सब-के-सब डाँटे जायेंगे। बेचारे दिल में सहमे जा रहे थे। चैनसिंह ने पूछा — वह दोनों कहाँ चले गये?

किसी के मुँह से आवाज़ न निकली। सहसा सामने से दोनों मजूर धोती के एक कोने में बेर भरे आते दिखाई दिए। ख़ुश-ख़ुश बात करते चले आ रहे थे। चैनसिंह पर निगाह पड़ी, तो दोनों के प्राण सूख गये। पाँव मन-मन भर के हो गये। अब न आते बनता है, न जाते। दोनों समझ गये कि आज डाँट पड़ी, शायद मजूरी भी कट जाये। चाल धीमी पड़ गयी। इतने में चैनसिंह ने पुकारा — बढ़ आओ, बढ़ आओ, कैसे बेर हैं, लाओ ज़रा मुझे भी दो, मेरे ही पेड़ के हैं न?

दोनों और भी सहम उठे। आज ठाकुर जीता न छोड़ेगा। कैसा मिठा-मिठाकर बोल रहा है। उतनी ही भिगो-भिगोकर लगायेगा। बेचारे और भी सिकुड़ गये।

चैनसिंह ने फिर कहा — जल्दी से आओ जी, पक्की-पक्की सब मैं ले लूँगा। ज़रा एक आदमी

लपककर घर से थोड़ा-सा नमक तो ले लो! (बाकी दोनों मजूरों से) तुम भी दोनों आ जाओ, उस पेड़ के बेर मीठे होते हैं। बेर खा लें, काम तो करना ही है।

अब दोनों भगोड़ों को कुछ ढारस हुआ। सभी ने आकर सब बेर चैनसिंह के आगे डाल दिए और पक्के-पक्के छाँटकर उसे देने लगे। एक आदमी नमक लाने दौड़ा। आध घंटे तक चारों पुर बंद रहे। जब सब बेर उड़ गये और ठाकुर चलने लगे, तो दोनों अपराधियों ने हाथ जोड़कर कहा — भैयाजी, आज जान बकसी हो जाये, बड़ी भूख लगी थी, नहीं तो कभी न जाते।

चैनसिंह ने नम्रता से कहा — तो इसमें बुराई क्या हुई? मैंने भी तो बेर खाये। एक-आध घंटे का हरज हुआ यही न? तुम चाहोगे, तो घंटे भर का काम आध घंटे में कर दोगे। न चाहोगे, दिन-भर में भी घंटे-भर का काम न होगा।

चैनसिंह चला गया, तो चारों बातें करने लगे।

एक ने कहा — मालिक इस तरह रहे, तो काम करने में जी लगता है। यह नहीं कि हरदम छाती पर सवार।

दूसरा — मैंने तो समझा, आज कच्चा ही खा जायेंगे।

तीसरा — कई दिन से देखता हूँ, मिज़ाज नरम हो गया है।

चौथा — साँझ को पूरी मजूरी मिले तो कहना।

पहला — तुम तो हो गोबर-गनेस। आदमी का रुख़ नहीं पहचानते।

दूसरा — अब ख़ूब दिल लगाकर काम करेंगे।

तीसरा — और क्या! जब उन्होंने हमारे ऊपर छोड़ दिया, तो हमारा भी धरम है कि कोई कसर न छोड़ें।

चौथा — मुझे तो भैया, ठाकुर पर अब भी विश्वास नहीं आता।

...

एक दिन चैनसिंह को किसी काम से कचहरी जाना था। पाँच मील का सफ़र था। यों तो वह बराबर अपने घोड़े पर जाया करता था, पर आज धूप बड़ी तेज़ हो रही थी, सोचा एक्के पर चला चलूँ। महावीर को कहला भेजा, मुझे लेते जाना। कोई नौ बजे महावीर ने पुकारा। चैनसिंह तैयार बैठा था। चटपट एक्के पर बैठ गया। मगर घोड़ा इतना दुबला हो रहा था, एक्के की गद्दी इतनी मैली और फटी हुई, सारा सामान इतना रद्दी कि चैनसिंह को उस पर

बैठते शर्म आई। पूछा — यह सामान क्यों बिगड़ा हुआ है महावीर? तुम्हारा घोड़ा तो इतना दुबला कभी न था; आजकल सवारियाँ कम हैं क्या? महावीर ने कहा — नहीं मालिक, सवारियाँ काहे नहीं हैं; मगर लारियों के सामने एक्के को कौन पूछता है। कहाँ दो-ढाई-तीन की मजूरी करके घर लौटता था, कहाँ अब बीस आने पैसे भी नहीं मिलते? क्या जानवर को खिलाऊँ, क्या आप खाऊँ? बड़ी विपत्ति में पड़ा हूँ। सोचता हूँ एक्का-घोड़ा बेच-बाचकर आप लोगों की मजूरी कर लूँ, पर कोई गाहक नहीं लगता। ज़्यादा नहीं, तो बारह आने तो घोड़े ही को चाहिए, घास ऊपर से। जब अपना ही पेट नहीं चलता, तो जानवर को कौन पूछे। चैनसिंह ने उसके फटे हुए कुरते की ओर देखकर कहा — दो-चार बीघे खेती क्यों नहीं कर लेते?

महावीर सिर झुकाकर बोला — खेती के लिए बड़ा पौरुख चाहिए मालिक! मैंने तो यही सोचा है कि कोई गाहक लग जाये, तो एक्के को औने-पौने निकाल दूँ, फिर घास छीलकर बाज़ार ले जाया करूँ। आजकल सास-पतोहू दोनों छीलती हैं, तब जाकर दस-बारह आने पैसे नसीब होते हैं।

चैनसिंह ने पूछा — तो बुढ़िया बाज़ार जाती होगी?

महावीर लजाता हुआ बोला — नहीं भैया, वह इतनी दूर कहाँ चल सकती है। घरवाली चली जाती है। दोपहर तक घास छीलती है, तीसरे पहर बाज़ार जाती है। वहाँ से घड़ी रात गये लौटती है। हलकान हो जाती है भैया, मगर क्या करूँ, तक़दीर से क्या ज़ोर।

चैनसिंह कचहरी पहुँच गये और महावीर सवारियों की टोह में इधर-उधर इक्के को घुमाता हुआ शहर की तरफ़ चला गया। चैनसिंह ने उसे पाँच बजे आने को कह दिया।

कोई चार बजे चैनसिंह कचहरी से फ़ुरसत पाकर बाहर निकले। हाते में पान की दुकान थी, ज़रा और आगे बढ़कर एक घना बरगद का पेड़ था, उसकी छाँह में बीसों ही ताँगे, एक्के, फिटनें खड़ी थीं। घोड़े खोल दिए गये थे। वकीलों, मुख़्तारों और अफ़सरों की सवारियाँ यहीं खड़ी रहती थीं। चैनसिंह ने पानी पिया, पान खाया और सोचने लगा, कोई लारी मिल जाये, तो ज़रा शहर चला जाऊँ कि उसकी निग़ाह एक घासवाली पर पड़ गयी। सिर पर घास का झाबा रक्खे साईसों से मोल-भाव कर रही थी। चैनसिंह का हृदय उछल पड़ा, यह तो मुलिया है! बनी-ठनी, एक गुलाबी साड़ी पहने, कोचवानों से मोल-तोल कर रही थी। कई कोचवान जमा हो गये थे। कोई उससे दिल्लगी करता था, कोई घूरता था, कोई हँसता था।

एक काले-कलूटे कोचवान ने कहा — मूला, घास तो उड़के अधिक से अधिक छः आने की है।

मुलिया ने उन्माद पैदा करने वाली आँखों से देखकर कहा — छः आने पर लेना है, तो वह

सामने घसियारिनें बैठी हैं, चले जाओ, दो-चार पैसे कम में पा जाओगे, मेरी घास तो बारह आने में ही जायेगी।

एक अधेड़ कोचवान ने फिटन के ऊपर से कहा — तेरा ज़माना है, बारह आने नहीं, एक रुपया माँग। लेनेवाले झख मारेंगे और लेंगे। निकलने दे वकीलों को, अब देर नहीं है।

एक ताँगेवाले ने, जो गुलाबी पगड़ी बांधे हुए था, बोला — बुढ़ऊ के मुँह में पानी भर आया, अब मुलिया काहे को किसी की ओर देखेगी!

चैनसिंह को ऐसा क्रोध आ रहा था कि इन दुष्टों को जूते से पीटे। सब-के-सब कैसे उसकी ओर टकटकी लगाये ताक रहे हैं, आँखों से पी जायेंगे। और मुलिया भी यहाँ कितनी ख़ुश है। न लजाती है, न झिझकती है, न दबती है। कैसे मुसकरा-मुसकराकर, रसीली आँखों से देख-देखकर, सिर का अंचल खिसका-खिसकाकर, मुँह मोड़-मोड़कर बातें कर रही है। वही मुलिया, जो शेरनी की तरह तड़प उठी थी।

इतने में चार बजे। अमले और वकील-मुख़्तारों का एक मेला-सा निकल पड़ा। अमले लारियों पर दौड़े। वकील-मुख़्तार इन सवारियों की ओर चले। कोचवानों ने भी चटपट घोड़े जोते। कई महाशयों ने मुलिया को रसिक नेत्रों से देखा और अपनी-अपनी गाड़ियों पर जा बैठे।

यकायक मुलिया घास का झाबा लिये उस फिटन के पीछे दौड़ी। फिटन में एक अंग्रेज़ी फैशन के जवान वकील साहब बैठे थे। उन्होंने पायदान पर घास रखवा ली, जेब से कुछ निकालकर मुलिया को दिया। मुलिया मुस्कराई, दोनों में कुछ बातें भी हुईं, जो चैनसिंह न सुन सके।

एक क्षण में मुलिया प्रसन्न-मुख घर की ओर चली। चैनसिंह पानवाले की दुकान पर विस्मृति की दशा में खड़ा रहा। पानवाले ने दुकान बढ़ाई, कपड़े पहने और केबिन का द्वार बंद करके नीचे उतरा तो चैनसिंह की समाधि टूटी। पूछा — क्या दुकान बंद कर दी?

पानवाले ने सहानुभूति दिखाकर कहा — इसकी दवा करो ठाकुर साहब, यह बीमारी अच्छी नहीं है!

चैनसिंह ने चकित होकर पूछा — कैसी बीमारी?

पानवाला बोला — कैसी बीमारी! आध घंटे से यहाँ खड़े हो, जैसे कोई मुरदा खड़ा हो। सारी कचहरी खाली हो गयी, सब दुकानें बंद हो गयीं, मेहतर तक झाड़ू लगाकर चल दिये; तुम्हें कुछ ख़बर हुई? यह बुरी बीमारी है, जल्दी दवा कर डालो।

चैनसिंह ने छड़ी सँभाली और फाटक की ओर चला कि महावीर का एक्का सामने से आता दिखाई दिया।

...

कुछ दूर एक्का निकल गया, तो चैनसिंह ने पूछा — आज कितने पैसे कमाये महावीर?

महावीर ने हँसकर कहा — आज तो मालिक, दिन भर खड़ा ही रह गया। किसी ने बेगार में भी न पकड़ा। ऊपर से चार पैसे की बीड़ियाँ पी गया।

चैनसिंह ने ज़रा देर के बाद कहा — मेरी एक सलाह है। तुम मुझसे एक रुपया रोज़ ले लिया करो। बस, जब मैं बुलाऊँ तो एक्का लेकर चले आया करो। तब तो तुम्हारी घरवाली को घास लेकर बाज़ार न जाना पड़ेगा। बोलो मंज़ूर है?

महावीर ने सजल आँखों से देखकर कहा — मालिक, आप ही का तो खाता हूँ। आपकी परजा हूँ। जब मरज़ी हो, पकड़ मँगवाइए। आपसे रुपये...

चैनसिंह ने बात काटकर कहा — नहीं, मैं तुमसे बेगार नहीं लेना चाहता। तुम मुझसे एक रुपया रोज़ ले जाया करो। घास लेकर घरवाली को बाज़ार मत भेजा करो। तुम्हारी आबरू मेरी आबरू है। और भी रुपये-पैसे का जब काम लगे, बेखटके चले आया करो। हाँ, देखो मुलिया से इस बात की भूलकर भी चर्चा न करना। क्या फ़ायदा!

कई दिनों के बाद संध्या समय मुलिया चैनसिंह से मिली। चैनसिंह असामियों से मालगुज़ारी वसूल करके घर की ओर लपका जा रहा था कि उसी जगह जहाँ उसने मुलिया की बाँह पकड़ी थी, मुलिया की आवाज़ कानों में आयी। उसने ठिठककर पीछे देखा, तो मुलिया दौड़ी आ रही थी। बोला — क्या है मूला! क्यों दौड़ती हो, मैं तो खड़ा हूँ?

मुलिया ने हाँफते हुए कहा — कई दिन से तुमसे मिलना चाहती थी। आज तुम्हें आते देखा, तो दौड़ी। अब मैं घास बेचने नहीं जाती।

चैनसिंह ने कहा — बहुत अच्छी बात है।

‘क्या तुमने कभी मुझे घास बेचते देखा है?’

‘हाँ, एक दिन देखा था। क्या महावीर ने तुझसे सब कह डाला? मैंने तो मना कर दिया था।’

‘वह मुझसे कोई बात नहीं छिपाता।’

दोनों एक क्षण चुप खड़े रहे। किसी को कोई बात न सूझती थी। एकाएक मुलिया ने

मुस्कराकर कहा — यहीं तुमने मेरी बाँह पकड़ी थी।

चैनसिंह ने लज्जित होकर कहा — उसको भूल जाओ मूला। मुझ पर जाने कौन भूत सवार था।

मुलिया गद्‌गद् कंठ से बोली — उसे क्यों भूल जाऊँ। उसी बाँह गहे (पकड़ने) की लाज तो निभा रहे हो। ग़रीबी आदमी से जो चाहे करावे। तुमने मुझे बचा लिया। फिर दोनों चुप हो गये।

ज़रा देर के बाद मुलिया ने फिर कहा — तुमने समझा होगा, मैं हँसने-बोलने में मगन हो रही थी?

चैनसिंह ने बलपूर्वक कहा — नहीं मुलिया, मैंने एक क्षण के लिए भी नहीं समझा।

मुलिया मुस्कराकर बोली — मुझे तुमसे यही आशा थी, और है।

पवन सिंचे हुए खेतों में विश्राम करने जा रहा था, सूर्य निशा की गोद में विश्राम करने जा रहा था, और उस मलिन प्रकाश में चैनसिंह मुलिया की विलीन होती हुई रेखा को खड़ा देख रहा था!

...

Electronic edition produced by

www.antrikexpress.com